International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 04-01-2021; Accepted: 20-02-2021; Published: 20-03-2021
www.hindijournal.com
Volume 7; Issue 2; 2021; Page No. 49-51

अकाल में उत्सव उपन्यास में चित्रित किसान त्रासदी

गौरव सिंह
पी. एच. डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग, तमिलनाडु केंद्रीय विश्वविद्यालय, तिरुवारुर, तमिलनाडु, भारत

सारांश
साहित्य और समाज में अभिन्न संबंध है। समाज यदि शरीर है तो साहित्य को उसकी आत्मा माना जाता है। किसी भी समाज की गतिविधियों की नींव पर ही साहित्य का सृजन होता है। साहित्य समाज की प्रतिध्वनि , प्रतिबिंब है। कोई भी साहित्यकार किसी न किसी समाज से अवश्य जुड़ा होता है , जिसके कारण वह समाज की विभिन्न घटनाओं, स्थितियों को साहित्य के माध्यम से रचने का कार्य करता है। साहित्य के माध्यम से साहित्यकार समाज को दिशा निर्देशन का कार्य भी करता है।
आज के समय में भी किसान शब्द सुनते ही एक गरीब , लुटा हुआ सा व्यथित लाचार दीन व्यक्ति का चित्र आंखों के सामने बन जाता है। जिस किसान को सरकारी बैठकों में सब अन्नदाता कहकर महिमामंडित करते हैं दरअसल वह आज सरकारी व्यवस्था की भेंट चढ़कर उपेक्षा का शिकार हो गया है। किसान की बदहाली देश की बदहाली है और इस सत्य को झुठलाया नहीं जा सकता है। इस स्थिति को समझते हुए भी न समझने का समझने ढोंग करती सरकारें भविष्य की भयावह स्थिति की ओर ले जा रहीं हैं। प्राकृतिक आपदायें किसान की शत्रु हैं। फिर भी यदि ऐसी परिस्थिति में प्रशासन किसानों के घावों पर आर्थिक मरहम लगाने के बजाय उनको उनकी ही स्थिति पर छोड़ दे तो इससे ज्यादा भयावह स्थिति किसानों के लिए क्या हो सकती है ? सरकार की नीतियाँ उल्टे किसान के गले का फंदा बन जाएं तो इसे क्या कहा जाएगा ? किसानों की आत्महत्या और उसके मौत के आँकड़े भी स्वाभाविक सी घटना जान पड़े तो हमें समझना चाहिए कि हम और हमारी सरकारें किस कदर किसान के प्रति संवेदनहीनता से गुजर रही हैं।

मूल शब्द: समाज, किसान, गरीबी, प्रशासन, अशिक्षा, सरकारी नीतियाँ, किसान आत्महत्या, मजदूर, त्रासदी, भ्रष्टाचार

प्रस्तावना

साहित्य युगबोध का संवाहक होता है। प्रत्येक काल के इतिहास, संस्कृति तथा परिस्थितयों का साक्षी बनकर वाणी करने का कार्य साहित्य ने सदैव किया है। समाज में प्रचलित गतिविधियों पर साहित्य की नजर रहती है। साहित्य किसी एक मानस की उपज नहीं बल्कि सम्पूर्ण समाज की गतिविधियों का परिणाम होता है। साहित्य समाज से परिचय करवाता है। साहित्य के माध्यम से ही सामाजिक अवरोधों को आम जनता के प्रस्तुत किया जा सकता है।

साहित्य ने हमेशा समाज में व्याप्त रुढ़ियों व सामाजिक समस्याओं को उजागर किया है। समाज में किसानों की समस्या हो, मजदूरों की समस्या हो अथवा समाज के किसी भी वर्ग की समस्या हो, साहित्य के माध्यम से उसकी अभिव्यक्ति हुई है। औद्योगिकीकरण ने कृषि को अब व्यापार बना दिया है। किसान मजदूर बनते जा रहे हैं। खेतों का क्षेत्रफल संकुचित होता जा रहा है। खेत की जगह अब विकास नाम के पत्थर दिखाई दे रहे हैं।

प्रेमचंद को अपने युग के एक प्रमुख एवं अमर उपन्यासकार के रूप में मान्यता प्राप्त है। प्रेमचंद ने अपने साहित्य के माध्यम से कृषक जनता की समस्याओं को उजागर किया साथ ही कृषक जनता के दुःख-दर्द को वाणी प्रदान करके अमानवीय व्यवस्था को बदलने का प्रयास किया है। भारतीय कृषि संस्कृति के ध्वस्त होने की प्रक्रिया को उन्होंने पाठकों के सम्मुख रखा और उसकी रक्षा का प्रश्न उपस्थित किया। प्रेमचंद के उपन्यास प्रेमाश्रय का हवाला देते हुए डॉ. रामविलास शर्मा अपनी पुस्तक प्रेमचंद और युग में लिखते हैं – "यह उपन्यास असहयोग आंदोलन के बाद छपा यह हमारा दुर्भाग्य था। फिर भी उसने स्वाधीनता आंनदोलन को दूर करने के लिए उसे एक नई गति देने में किसान समस्या को आजादी की मूल समस्या के रूप में स्वीकार करने में बहुत बड़ा काम किया है। ऐसा सामाजिक महत्व विरले ही उपन्यासों का होता है।"[1] किसान के जीवन में आज भी वही समस्याएँ बनी हुई हैं जो प्रेमचंद के समय रहीं।

2016 में प्रकाशित पकंज सुबीर का उपन्यास अकाल में उत्सव सरकारी शासन प्रणाली का किसानों के प्रति उनके रबैये का पर्दाफाश करता है। एक तरफ प्रस्तुत शासन तंत्र यह कहते हुए नहीं थकता है कि भारत एक कृषि प्रधान देश है वहीं उसी किसान के देश में उसका शोषण किया जा रहा है। आज किसान की आवाज घुट रही है। उद्योग धंधों और बाजार की चमक – धमक के बीच में कृषि स्थान उपेक्षित हो रहा है । हर दिन किसान आत्महत्या की खबर छपती रहती है। फसलों के उचित दाम न मिलने के कारण कृषि घाटे का सौदा बनती जा रही है। किसान प्राकृतिक आपदाओं का उतना मारा हुआ नहीं है जितना कि व्यवस्थाओं का मारा हुआ है। जैसाकि अकाल में उत्सव नाम के शीर्षक से ही उपन्यास के भीतर की कहानी का पता चलता है। एक तरफ भयानक अकाल है तो दूसरी ओर रंगीला उत्सव है। एक तरफ किसान की त्रासदी है तो दूसरी तरफ उन्माद और हर्षोल्लास का माहौल है। एक तरफ आम आदमी की भीड़ है तो दूसरी ओर सरकारी तंत्र का ताना बाना है। प्रस्तुत उपन्यास के केंद्र में दो मुख्य पात्र हैं जिसमें एक तरफ कलेक्टर श्रीराम परिहार हैं तो वहीं दूसरी ओर किसानों के प्रतिनिधि के रूप में रामप्रसाद।

इस उपन्यास की कथावस्तु में दो कहानियाँ समान रूप से चलती है। कहानी के एक रूप में है सरकारी व्यवस्था हममर्जी तो दूसरी कहानी है गाँव के किसान की। दोनों कहानियाँ एक दूसरे के पूर्णतया विपरीत हैं। एक तरफ

किसान जीवन की घुटन भरी भयानक त्रासदी है वहीं दूसरी तरफ प्रशासन में वाले आला अधिकारियों के हर्ष-उल्लास का रंगीन दृश्य है । प्रस्तुत उपन्यास की कहानी में अचानक मोड़ आ जाता जब टूरिज्म विभाग की ओर से उत्सव के लिए फण्ड आता है । उस फण्ड को कलेक्टर श्रीराम परिहार के आदेशानुसार किसी और ठिकाने लगाकर, उत्सव के लिए फण्ड का इंतजाम चंदा के रूप में नगर निगम व शराब के ठेकेदार से किया जाता है । इस चंदा को इकट्ठे करने के काम में सामाजिक कार्यकर्ता मोहन राठी और रमेश चौरसिया जैसे जनता और प्रशासन के मुँह लगे तथा राहुल वर्मा जैसे पत्रकार भूमिका निभाते हैं । हमारे देश के प्रशासनिक अधिकारी किस तरह से कार्य करते हैं , किस तरह जिले की सत्ता कलेक्टर साहब के इर्द-गिर्द घूमती है . इन सब पहलुओं का सूक्ष्म विश्लेषण यह उपन्यास करता है ।

एक मामूली किसान छोटी सी जोत के माध्यम से , वह भी बिना पर्याप्त साधनों के कैसे अपनी रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा कर सकता है । किसान जीवन की त्रासदी को लेखक चंद लफ्जों में बताता है – "किसान के जीवन में बढ़ते दुःख उसकी पत्नी के शरीर पर से घटते जेवरों से आकलित किए जा सकते हैं ।"[2] किसान , कर्जा , कुर्की, और कलेक्टर ये चारों शब्दों से भले ही अनुप्रास अलंकार बनता हो, लेकिन यह किसान ही जानता है कि इस अनुप्रास में कितना बड़ा संत्रास छिपा हुआ है । किसान का जीवन संकटों से घिरा ही रहता है । उसके सपने पूरे नहीं होते । बच्चों की पढ़ाई हो या कोई त्योहार किसान के लिए सब बराबर है । दो वक्त की रोटी किसान की कामयाबी होती है । कर्जा किसान के जीवन का अभिन्न हिस्सा की तरह हो गया है । इसलिए तो यह प्रचलित है कि एक किसान कर्ज में पैदा होता है, कर्ज में जीता है और कर्ज में ही मर जाता है। इसी समस्या पर बल देते हुए लेखक ने लिखा है- "हर छोटा किसान किसी न किसी का कर्जदार है, बैंक का सोसाइटी का, बिजली विभाग का या सरकार का ।"[3]

हर वस्तु के मूल्य बढ़ रहे हैं । महगाई सुरसा के मुँह जैसी बढ़ती ही जा रही है । सरकारें किसानों को कृषि के साधनों पर थोड़ी सी सब्सिडी देकर अपनी पीठ थपथपाती हैं । वह किसान वर्ग का मसीहा होने का दावा करती हैं । लेकिन ठीक इसके विपरीत लेखक ने अपना मत देकर यह सिद्ध किया है कि – "यह दुनिया की सबसे बड़ी कृषि आधारित अर्थव्यवस्था है, जिसमें हर कोई किसान के पैसे पर अय्याशी कर रहा है । सरकार कहती है कि सब्सिडी बांट रही है जबकि हकीकत यह है कि न्यूनतम समर्थन मूल्य के आंकड़े में उलझा किसान तो अपनी जेब से बांट रहा है सबको सब्सिडी । यदि 40 साल में सोना 40 गुना बढ़ गया तो गेहूं भी आज 4000 के समर्थन मूल्य पर होना था, जो आज है पंद्रह सौ । मतलब यह कि हर एक क्विंटल पर ढाई हजार रुपये किसान की जेब से सब्सिडी जा रही है ।"[4]

प्रशासन में हो रहे भ्रष्टाचार को लेखक ने बड़ी संजीदगी से एडीएम राकेश पांडे के मुंह से ही कहलवाता है- "तो कौन भ्रष्ट नहीं है ? किस विभाग में भ्रष्टाचार नहीं है ? एक विभाग का नाम बता दीजिए जिसमें भ्रष्टाचार नहीं हो । हमारे सिस्टम में तो भ्रष्टाचार एक हो चुका है, जिसके बिना मशीन काम ही नहीं करती । अगर आप इस टूल को हटाने की कोशिश करेंगे तो सिस्टम बैठ जाएगा जो भी सरकारी नौकरी में आ रहा है, तनख्वाह लेने नहीं आ रहा है, तनख्वाह तो प्राइवेट सेक्टर में भी मिलती है और यहां से ज्यादा मिलती है । अगर कोई आ रहा है तो वह इस भ्रष्टाचार की गंगा में डुबकी लगाने ही आ रहा है।"[5]

अंधविश्वास ने आम आदमी का बेड़ा गर्क कर के रखा है । जगह-जगह ढोंगी बाबाओं की भीड़ है । धर्म और भगवान के नाम पर अपना पेट भर रहे हैं । भगवान नहीं कहता मंदिर बनवाओ । किसान के जीवन में तो एक के बाद एक समस्या लगी रहती है । दान दक्षिणा देना भी एक निम्नवर्गीय किसान हद से बाहर है, फिर वह इससे मुकर नहीं सकता है । भारत का किसान भूखा सो जाएगा पर भगवान के नाम से मुकर नहीं सकता । भगवान के नाम का डर किसान के जहन में बराबर बना रहता है । लेखक कहता है - "भगवान वास्तव में भय का ही दूसरा नाम है, इसलिए शायद उसका भय के साथ अनुप्रास भी बैठता है । भगवान भक्त और भय और भूत...? उसमें भी तो अनुप्रास है क्योंकि, उससे भी भय लगता है। यदि भय नहीं हो तो भगवान को कौन भक्त पूछेगा ।"[6]

प्रशासन के सबसे बड़े अधिकारी कहे जाने वाले कलेक्टर साहब श्री राम परिहार असल में इच्छाधारी नाग हैं । वह बात तो बहुत अच्छे से करते हैं लेकिन इच्छाधारी नाग भी चौवीस घंटे में एक बार अपने असली वेश में जरूर आता है । श्रीराम परिहार कुछ इसी तरह से व्यवहार करते हैं । वह कहते हैं- "उत्सव के बाद ध्यान रखना, नो सॉफ्ट कॉर्नर फॉर दीज़ फार्मर्स नो मीन्स स्ट्रेक्टली नो बी आर नॉट हियर फॉर ऑल फुलिश थिंग्स । आय एम फेड उप ऑफ आल दीज़ थिंग्स ।"[7] मुंह पर हमदर्दी जताने के लिए कुछ कहना पर असल में किसान उनके लिए फुलिशिथंग्स के अलावा कुछ नहीं हैं । यही व्यवस्था किसान को दीमक की तरह खाए जा रही है । प्रशासन में बैठे नीचे से ऊपर तक सारे आला अधिकारी अपनी-अपनी धौंस जमाने से नहीं चूकते । बेचारा रामप्रसाद कलेक्टर के पास अपनी व्यथा कहने क्या चला गया मानो उसकी शामत ही आ गई हो , इस बात को लेकर खफा पटवारी का रौब देखने लायक है... - "सच – सच बता म्हारे , कँइ भी कही हो तो अभी बता दे , बाद में म्हारे पता चली कि तूने कही थी , तो फिर म्हारे से बुरो कोई नी होयगो , पटवारी ने लगभग धमकी के स्वर में में कहा रामप्रसाद से. रामप्रसाद उस धमकी को सुनकर अंदर तक काँप गया "[8] रामप्रसाद के जैसा छोटे किसान पर यह धमकियां कितनी घातक सिद्ध हो सकती हैं । पटवारी उसके दिमाग को मनोवैज्ञानिक तरह से डरा धमका कर अपने बस में कर लेना चाहता है ।

किसान हर आपदा को झेलता है । भले ही वह अन्नदाता के नाम से जाना जाता है पर इस अन्नदाता की समस्याओं को कोई भी घूस लिए बिना नहीं सुलझाना चाहता है । आखिर किसान किसके पास जाए । ओले, आंधी, तूफान, बाढ़, सूखा आदि प्राकृतिक आपदाओं से तो किसान सबसे ज्यादा आहत होता है फिर भी लाचार है । बिना पैसा लिए कोई उसकी बात सुनना ही नहीं चाहता है तहसीलदार रामप्रसाद से कहता है - "कहने से कुछ नहीं होता है, देने से होता है। भेंट-पूजा करनी पड़ती है रिपोर्ट लिखवाने के लिए । कुछ लाया है क्या ? लाया हो तो दे दे, मैं ग्राम सेवक को दे दूंगा, वह ठीक से रिपोर्ट बना देंगे । वैसे नहीं बनाता है कोई भी रिपोर्ट ।"[9] राम प्रसाद के घर में खाने-पीने की तंगी है तो वह घूस के पैसे कहाँ से देगा । प्रशासन में बैठे आला अधिकारी सब किसानों का खून चूसने के लिए बैठे हैं । लेखक लिखता है, "यह पटवारी, यह गिरदावर, यह सब सरकारी जोकें हैं, जो किसान के तन पर चिपकी हुई उसका खून चूस रही है । क्या इन कलेक्टरों को पता नहीं कि इसके हाथ के नीचे क्या गंदा खेल चलता है ? सब पता होता है मगर, हर एक लूट में बस यह किस्सा होता है, लूट के माल में सबका हिस्सा होता है...।"[10] लेखक ने इन तीन लाइनों में प्रशासन की हकीकत को साफ-साफ दिखाया है । सब नीचे से ऊपर तक एक कड़ी के रूप में जुड़े हैं । सबका हिस्सा सबको जाता मगर वह आता कहाँ से है कोई नहीं जानना चाहता है । किसान की त्रासदी कोई नहीं समझना चाहता है ।

आज किसान, किसान नहीं रहा है। वह अपने ही खेतों में मजदूर बन गया है । बड़े पैमाने पर मल्टीनेशनल कंपनियां जमीनों को किसान से खरीद रही हैं । किसान जमीन बेचे भी क्यों न उस पर तो कर्ज लदा है । उस खरीदी हुई जमीन पर किसान से काम करवा रही है । लेखक लिखता है, "गांव की

जमीन सोना नहीं उगलती, बस जीवन चलाने भर को पैदावार हो जाए, तो बहुत है। छोटा किसान जब तक लड़ सकता है, तब तक किसान रहता है और फिर हारकर मजदूर बन जाता है। पहले अपने लिए मजदूरी करता था, अब दूसरों के लिए करता है।" [11] किसान अपनी जमीन पर जब तक काम करता है वह स्वयं में किसान रहता है लेकिन जब अपनी खेती बेचकर फिर उस पर काम करता है तो किसान से मजदूर बन जाता है। एक किसान के लिए इससे ज्यादा क्या तकलीफ होगी कि वह अपनी ही जमीन पर मजदूरी करने को विवश हो।

अगर किसान खेती ना करे तो क्या खाएगा ? उस खेती करने में भी बहुत सारी अड़चनें हैं। किसान खेत को बनाता है। बीज लाता है, बोता है पानी देता है फसल बड़ी होती है तो उस फसल पर किसान की जाने कितनी आशाएं बंधी रहती हैं। इस बीच फसल के पकने के समय कोई प्राकृतिक आपदा आ जाए उसको भी किसान झेलता है। इन्हीं सब कारणों से वह किसान का खेती से मोहभंग हो रहा है वह अब किसान से मजदूर बनता जा रहा है। किसान धीरे-धीरे जमीन को बेच रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियां किसान को मजदूर बनाने में लगी हैं।

आधुनिक हिंदी किसान जीवन से संबंधित उपन्यासों में जैसे 'यह गांव बिकाऊ है', 'कालीचाट', 'अकाल में उत्सव', 'हिडिंब', 'हलफनामे' आदि उपन्यासों में किसान जीवन की समस्याओं को दिखाया गया है। किसान प्रेमचंद के समय में भी ऋण में डूबा था और आज के समय में भी किसानों की वही स्थिति है। 2000 से अब तक के कृषि प्रधान उपन्यासों में राजू शर्मा का 'हलफनामें', पंकज सुबीर का 'अकाल में उत्सव' , रामनाथ शिवेन्द्र का 'पट्टा चरित' , जयनंदन का 'सल्तनत को सुनो गाँव वालो' तेजपाल चौधरी का 'भूमि पुत्र' तथा एम. एम. चंद्र का उपन्यास 'यह गांव बिकाऊ है' आदि उपन्यास आते हैं। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में किसानों की आत्महत्या एक बड़ी समस्या के रूप में उभरी है। इसका यथार्थ रूप में 'हलफनामे', 'अकाल में उत्सव' तथा 'यह गांव बिकाऊ है' उपन्यासों में देखा जा सकता है। औद्योगिक क्रांति होने से पूँजीपतियों ने किसानों की जमीन को हथियाना शुरू कर दिया। 21वीं सदी कृषिपरक हिन्दी उपन्यासों में यह स्थिति देखी जा सकती है। जहाँ बहुराष्ट्रीय कंपनियां किसानों को बहला-फुसलाकर उनकी जमीन पर कब्जा करना चाहती हैं। वह किसानों को बड़े-बड़े सपने दिखाकर उसको किसान से मजदूर बनाने में लगी हैं। भारत के खेत अब कारखानों तथा बड़े-बड़े मकानों से भर रहे हैं। गांव का किसान और मजदूर वर्ग बैंकों का ऋणी बन गया है। किसान ऋण नहीं लेता है फिर भी बिचौलियों के द्वारा उसके खाते से ऋण लिया जा रहा है और ऋण भरने को किसान को कहा जाता है। इस मिली भगत पर कोई अंकुश नहीं लगा रहा है। 'अकाल में उत्सव' उपन्यास में इस प्रकार की समस्या को देखा जा सकता है। साथ ही प्रशासन की तरफ से उपेक्षित किसान आत्महत्या करने पर मजबूर हैं।

भारतीय कृषक का एकमात्र सहारा कृषि ही है। इसी से उत्पादन कर वह अपने घर परिवार को चलाता है। इस पर भी वह कर्जदार बना रहता है। किसान के बच्चे अच्छी शिक्षा नहीं पाते हैं। उपनिवेशिक स्थितियों के कारण आज किसान सबसे उपेक्षित और प्रताड़ित हैं। किसान के उत्पाद को सरकार कम मूल्यों पर खरीद कर के व्यापारियों को फायदा पहुंचाने में व्यस्त है। किसानों की बढ़ती आत्महत्या का कारण पारिवारिक, औद्योगिकीकरण, सामाजिक, आर्थिक वा कर्ज आदि का ज्वलंत समस्याओं का चित्रण 21वीं सदी के उपन्यासों में हुआ है।

संदर्भ सूची

1. पृष्ठ सं. 55 , पुस्तक - प्रेमचंद और उनका युग, लेखक – रामविलास शर्मा (राजकमल प्रकाशन)
2. पृष्ठ सं. 11 , पुस्तक – अकाल में उत्सव, लेखक – पंकज सुबीर (शिवना प्रकाशन)
3. पृष्ठ सं. 27 , वही
4. पृष्ठ सं. 42 , वही
5. पृष्ठ सं. 172 , वही
6. पृष्ठ सं. 162 , वही
7. पृष्ठ सं. 155, वही
8. पृष्ठ सं. 198 , वही
9. पृष्ठ सं. 203 , वही
10. पृष्ठ सं. 179 , वही
11. पृष्ठ सं. 08 , वही